अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः

नवमो भागः

सौवरः ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यामष्टमो भागः ।

पठनपाठनव्यवस्थायामेकादशं पुस्तकम् ।

श्रीहरिश्चन्द्र त्रिवेदी प्रबन्धकर्त्तुः प्रबन्धेन
वैदिक-यन्त्रालय अजमेरनगरे मुद्रितः ।

संवत् १९६९ विक्रमी.
श्रीमद्दयानन्दाब्द ३०.

तीसरी वार २०००] [मूल्य -)॥

अथ सौवरः ॥
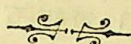
१—महाभाष्य—स्वयं राजन्त इति स्वरा अन्वग्भवति व्यञ्जनम् ॥

स्वर उन को कहते हैं कि जो विना किसी की सहायता से उच्चारित और स्वयं प्रकाशमान और व्यञ्जन वे कहाते हैं कि जिन का उच्चारण स्वरके आधीन हो ॥ १ ॥

२—उच्चैरुदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । २९ ॥

किसी एक मुख के स्थान में जिस अच् का ऊंचे स्वर से उच्चारण हो वह उदात्त संज्ञक होता है । जैसे । औपगवः । यहां अण् प्रत्यय का अकार उदात्त हुआ है ॥ २ ॥

३—महाभाष्य—आयामो दारुण्यमणुता खस्येत्युच्चैःकराणि शब्दस्य ॥

उदात्त स्वर के उच्चारण में इतनी बातें होनी चाहियें (आयामः) शरीर के सब अवयवों को रोक लेना अर्थात् ढीले न रखना (दारुण्यम्) शब्द के निकलते समय तीखा रूखा स्वर निकले और (अणुता खस्य) कण्ठ को रोक के बोलना चाहिये फैलाना नहीं । ऐसे प्रयत्नों से जो स्वर उच्चारण किया जाता है वह उदात्त कहाता है । यही उदात्त का लक्षण है ॥ ३ ॥

४—नीचैरनुदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३० ॥

जो किसी एक मुखस्थान में नीचे प्रयत्न से उच्चारण किया हुआ स्वर है उस को अनुदात्त कहते हैं । जैसे । औपगवः । यहां जिन के नीचे तिर्छी रेखा है वे तीनों वर्ण अनुदात्त हैं ॥ ४ ॥

५—महाभाष्य—अन्ववसर्गो मार्दवमुरुता खस्येति नीचैःकराणि शब्दस्य ॥

अनुदात्त उच्चारण में (अन्ववसर्गः) शरीर के अवयवों को शिथिल करदेना (मार्दवम्) कोमलता स्निग्ध उच्चारण करना (उरुता खस्य) और कण्ठ को कुछ फैला के बोलना । इस प्रकार के प्रयत्न से उच्चारण किये स्वर को अनुदात्त कहते हैं यही इसका लक्षण है ॥ ५ ॥

६—समाहारः स्वरितः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३१ ॥

उदात्त और अनुदात्त गुण का जिसमें मेल हो वह अच् स्वरित संज्ञक होता

है। जो उदात्त स्वर है। उस का कोई चिन्ह नहीं होता किन्तु बहुधा स्वरित वा अनुदात्त से पूर्व ही उदात्त रहता है। अनुदात्त वर्ण के नीचे जैसा (क्र) यह तिर्छा चिन्ह किया जाता है। और स्वरित के ऊपर (कं) ऐसा खड़ा चिन्ह किया जाता है। दो वस्तु को मिला के जो बनता है उस का तीसरा नाम रखते हैं। जैसे श्वेत और काला ये रङ्ग अलग २ होते हैं परन्तु जो इन दोनों को मिलाने से उत्पन्न होता है उस को (कल्माष) खाखी वा आसमानी कहते हैं इसी प्रकार यहां भी उदात्त और अनुदात्त गुण पृथक् २ हैं परन्तु जो इन दोनों को मिलाने से उत्पन्न हो उस को स्वरित कहते हैं ॥ ६ ॥

७-तस्यादित उदात्तमर्द्धह्रस्वम् ॥ अ० ॥ १ । २ । ३२ ॥

जो पूर्व सूत्र में स्वरित विधान किया है उस के तीन भेद होते हैं। ह्रस्वस्वरित, दीर्घस्वरित और प्लुतस्वरित। सो इन स्वरितों की आदि में आधी मात्रा उदात्त होती और सब अनुदात्त रहती हैं जैसे। कं। कन्या। शक्तिके३ शक्तिके। यहां ह्रस्व दीर्घ और प्लुत तीनों क्रम से स्वरित हुए हैं। इस सूत्र में ह्रस्व के कहने से यह सन्देह होता है कि दीर्घस्वरित और प्लुतस्वरित में उदात्त का विभाग न होना चाहिये क्योंकि ह्रस्वसंज्ञा से दीर्घ प्लुतसंज्ञा भिन्नकालिक है। इसीलिये अर्द्ध ह्रस्वशब्द के आगे प्रमाण अर्थ में मात्रच् प्रत्यय का लोप महाभाष्यकार ने माना है कि ह्रस्व का अर्द्धभागमात्र अर्थात् आदि की आधी मात्रा ह्रस्व दीर्घ प्लुत किसी में हो उदात्त होजाती है। इस सूत्र के उपदेश करने में प्रयोजन यह है कि जो मिली हुई चीज़ होती है उस में नहीं जाना जाता कि कौनसा कितना भाग है। जैसे दूध और जल मिलादें तो यह नहीं विदित होता कि कितना दूध और कितना जल है तथा किधर दूध और किधर जल है इसी प्रकार यहां भी उदात्त और अनुदात्त मिले हुए हैं इस कारण जाना नहीं जाता कि कितना उदात्त और कितना अनुदात्त और किधर उदात्त और किधर अनुदात्त है। इसलिये सब के मित्र हो के पाणिनि महाराज ने इस सूत्र का उपदेश किया है जिस से ज्ञात होजावे कि इतना उदात्त इतना अनुदात्त तथा इधर उदात्त और इधर अनुदात्त है (प्रश्न) जो पाणिनि महाराज सब के ऐसे परम मित्र थे तो इस प्रकार की और बातें क्यों नहीं प्रसिद्ध कीं। जैसे स्थान करण प्रयत्न नादानुप्रदान आदि (उत्तर) जब व्याकरण अष्टाऽध्यायी बनाई गई थी उस से पूर्व ही शिक्षा आदि कई ग्रन्थ बन चुके थे। जिन में स्थान करण आदि का प्रकार लिखा है क्योंकि शब्द के उच्चारण में जितने साधन हैं वे मनुष्य को प्रथम ही जानने चाहियें। और जो बातें उन ग्रन्थों में लिख चुके थे उन को फिर अष्टाऽध्यायी में भी लिखते तो पिष्टपेषण दोषवत् पुनरुक्त दोष समझा

जाता । इसलिये जो बातें वहां नहीं लिखीं वे यहां प्रसिद्ध की हैं । तथा गणनी से भी व्याकरण तीसरा वेदाङ्ग है इसलिये पाणिनिजी महाराज ने सब कुछ अच्छा ही किया है । जो इस सूत्र का प्रयोजन और इस पर प्रश्नोत्तर लिखे हैं सो सब महाभाष्य में स्पष्ट करके इसी सूत्र पर लिखे हैं * ॥ ७ ॥

८—एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ ॥ अ० ॥ १ । २ । ३३ ॥

दूर से अच्छे प्रकार बल से बुलाने अर्थ में उदात्त अनुदात्त और स्वरित इन तीनों स्वरों का एकश्रुति अर्थात् एकतार श्रवण हो पृथक् २ सुनने में न आवें ऐसा उच्चारण करना चाहिये । जैसे । आगच्छ भो माणवक देवदत्त ३ । यहां उदात्तानुदात्तस्वरित का पृथक् २ श्रवण नहीं होता । दूरात् ग्रहण इसलिये है कि आगच्छ भो भवदेव । यहां उदात्त अनुदात्त और स्वरितों का अलग २ उच्चारण होता है ॥ ८ ॥

९—उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ६६ ॥

सब स्वरप्रकरण में यह सामान्य नियम समझना चाहिये कि जो उदात्त से परे अनुदात्त हो तो उस को स्वरित हो जाता है । जैसे । ऋतेन । यहां (ते) उदात्त है उससे परे नकार अनुदात्त को स्वरित हो जाता है । ऋतेन । तथा । गार्ग्यः । यहां गा उदात्त है और (र्ग्य) अनुदात्त था उस को (र्ग्यं) स्वरित हो जाता है । इसी प्रकार उदात्त से परे जहां २ स्वरित आता है वहां २ सर्वत्र असंख्य शब्दों में इसी सूत्र से अनुदात्त को स्वरित जानना चाहिये । और जहां उदात्त से परे अनेक अनुदात्त हों वहां एक को स्वरित औरों को जो होना चाहिये सो आगे लिखेंगे । उदात्त से परे जो अनुदात्त उस से परे उदात्त वा स्वरित होने में विशेष इतना है कि— ॥ ९ ॥

१०—नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ६७ ॥

उदात्त से परे जिस अनुदात्त को स्वरितविधान किया है यदि उस से परे

* (तस्यादित०) इस सूत्र के व्याख्यान में काशिकाकार जयादित्य और भट्टोजिदीक्षित आदि लोगों ने लिखा है कि इस सूत्र में ह्रस्वग्रहण शास्त्रविरुद्ध है सो यह केवल उन की भूल है क्योंकि जो ह्रस्वग्रहण का कुछ प्रयोजन नहीं होता तो महाभाष्यकार अवश्य प्रसिद्ध कर देते उन्होंने तो जो इसमें सन्देह हो सकता है उस का समाधान किया है कि अर्द्धह्रस्व शब्द के आगे मात्रच् प्रत्यय का लोप जानो जिससे दीर्घ प्लुत स्वरित में भी उदात्त का विभाग हो जावे । ह्रस्वस्यार्द्धमर्द्धह्रस्वम् । एक मात्रा का ह्रस्व है उस की आधी मात्रा जो आदि में है वह उदात्त और शेष इससे परे सब अनुदात्त है यह बात इस (अर्द्धह्रस्व) के ग्रहण ही से जानी गई ॥

उदात्त वा स्वरित हो तो उस अनुदात्त को स्वरित न हो । परन्तु गार्ग्य, काश्यप, गालव इन ऋषियों के मत को छोड़ के अर्थात् इन तीनों के मत में तो उस अनुदात्त को भी स्वरित होजावे कि जिस से परे उदात्त वा स्वरित हो । परन्तु यह गार्ग्य आदि ऋषियों का मत वेद में प्रवृत्त नहीं होता क्योंकि वेद सनातन हैं वहां किसी का मत नहीं चलता । लौकिक प्रयोगों में गार्ग्य आदि का मत चल जाता है । वेद में सर्वत्र उदात्त स्वरितोदय हो तो भी अनुदात्त ही बना रहता है । जैसे । कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम । यहां देवस्य नाम । नाम शब्द आद्युदात्त के परे होने से भी 'व' उदात्त से परे 'स्य' अनुदात्त को स्वरित नहीं हुआ । तथा । न व्यं तदुकृथ्यम् । यहां तकार उदात्त से परे दु अनुदात्त को आगे 'कृथ्यं' स्वरित होने से भी स्वरित नहीं होता । इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये । लौकिक उदाहरण । गार्ग्य ऋषिः । यहां गार्ग्य और ऋषि दोनों शब्द आद्युदात्त हैं । ऋकार उदात्त के उदय में अनुदात्त 'र्ग्य' को स्वरित नहीं होता । गार्ग्य ऋषिः । और गार्ग्य आदि के मत में गार्ग्य ऋषिः । ऐसा भी होता है । अब एकश्रुतिस्वरविषय में लिखते हैं ॥ १० ॥

११–यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु ॥ अ० ॥ १ । २ । ३४ ॥

यज्ञकर्म अर्थात् यज्ञसम्बन्धी कर्म करने में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं वहां उदात्त अनुदात्त और स्वरित को एकश्रुतिस्वर हो उदात्तादि का पृथक् २ श्रवण न हो परन्तु जप करने में तथा न्यूङ्ख किसी प्रकार के वेद के स्तोत्रों का नाम हैं वहां और सामवेद में उदात्तादि के स्थान में एकश्रुति न हो किन्तु तीनों स्वर पृथक् २ बोले जावें जैसे । समिधाऽग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ १ ॥ इत्यादि मन्त्र होम करते समय स्वरभेद के विना ही पढ़े जाते हैं । तीनों स्वर के विभाग से वेदमन्त्रों का पाठ होना चाहिये इस कारण यज्ञकर्म में भी पृथक् २ उच्चारण प्राप्त था इसलिये इस सूत्र का आरम्भ है ॥ ११ ॥

१२–उच्चैस्तरां वा वषट्कारः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३३ ॥

जो यज्ञकर्म में वषट्कार शब्द है वह विकल्प करके उदात्ततर हो और पक्ष में एकश्रुतिस्वर होता है । जैसे । वषट्कारैः सरस्वती । वषट्कारैः सरस्वती । यहां उदात्त और एक श्रुति दोनों का चिन्ह न होने से एक ही प्रकार का स्वर दीख पड़ता है परन्तु उच्चारण में भेद जान पड़ता है ॥ १२ ॥

१३–विभाषा छन्दसि ॥ अ० ॥ १ । २ । ३६ ॥

वेदमन्त्रों के सामान्य उच्चारण करने में उदात्त अनुदात्त और स्वरित को

किस्योऽन्तोदात्तः देवस्य नाम
पिच

...ोता है। एकश्रुतिपक्ष में उदात्तादि का भिन्न २ ...ा पक्ष तीन वेदों में घटते हैं। सामवेद में तीनों स्वर ... जाते हैं क्योंकि (११) सूत्र से सामवेद में एकश्रुति होने चुके हैं ॥ १२ ॥

सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३७ ॥

जो सुब्रह्मण्या ऋचा में यज्ञकर्म में पूर्वसूत्र से एकश्रुतिस्वर प्राप्त है सो न किन्तु जो उसमें स्वरित वर्ण हों उन के स्थान में उदात्त होजावे। सुब्रह्मण्या ऋचा का नाम है। उस का व्याख्यान शतपथ ब्राह्मण में तृतीय काण्ड तीय प्रपाठक के प्रथम ब्राह्मण में सत्रहवीं कण्डिका से लेके बीसवीं कण्डिका पर्यन्त किया है। उस ऋचा में जितने शब्द हैं उन सब में स्वर का विशेष नियम समझना चाहिये ॥

भा०—सुब्रह्मण्यायामोकार उदात्तो भवति ॥

सुब्रह्मन् शब्द से साध्वर्थ में यत् प्रत्यय होके स्वरितान्त होता है। उसका टाप् और आकार के साथ एकादश होके स्वरित हो उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त आदेश हो जाता है और तीन वर्ण अनुदात्त रहते हैं। सुब्रह्मण्योम् ॥

भा०—आकार आख्याते परादिश्च वाक्यादौ च द्वे द्वे ॥

जहां आख्यातक्रिया परे हो वहां उससे पूर्व का आकार और उस क्रिया का आदि वर्ण उदात्त होता है जैसे। इन्द्र आगच्छ। हरिव आगच्छ। यहां ऐसा समझो कि (इन्द्र) और (हरिवः) शब्द आमंत्रित होने से आद्युदात्त हैं उन के दूसरे वर्ण अनुदात्त हैं उन को उदात्त से परे स्वरित हो जाता है। उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त करते हैं। इस प्रकार इन्द्र शब्द सब उदात्त और हरिव शब्द में भी जो दो उदात्त और वकार अनुदात्त है उस को पूर्व उदात्त के असिद्ध मानने से स्वरित नहीं होता। 'आगच्छ' में आकार तो प्रथम ही उदात्त है उससे परे दोनों अक्षर अनुदात्त हैं। आकार उदात्त से परे गकार अनुदात्त को स्वादित होके इस सूत्र से स्वरित को उदात्त हो जाता है। इस प्रकार। इन्द्र आगच्छ इस वाक्य में एक छकार अनुदात्त और चार वर्ण उदात्त रहते हैं तथा हरिव आगच्छ इस वाक्य में वकार छकार दो वर्ण अनुदात्त और चारवर्ण उदात्त रहते हैं। सुब्रह्मण्यो३मिन्द्र आगच्छ हरिव आगच्छ मेधातिथेर्मेषवृषणश्वस्य मेने गौर व स्कन्दिन्नहल्यायै जार। कौशिक ब्राह्मण गौतम ब्रुवाणश्वः सुत्यामागच्छ मघवन् ॥ १ ॥ मेधातिथेर्मेष। यहां आमंत्रित मेष शब्द के

परे पूर्व सुबन्तको पराङ्गवत् आद्युदात्त होके सब हो। परन्तु गार्ग्य, काश्यप, उदात्त से परे 'धा' अनुदात्त को स्वरित होकर उनों के मत में तो उस अनु- हो के आदि में दो उदात्त और चार वर्ण अनुदात्त रहरगित हो। परन्तु यह श्वस्यमेने। गौरा वस्कन्दिन्। अहल्या यै जार। के.वे: सनातन हैं ब्रुवाण। इन सब में दो २ आदि में उदात्त और सब वर्ण अनुदा मत चल और सुत्या शब्द अन्तोदात्त हैं। इनसे उदात्त शब्द से परे सु अनुदात्त को रहता उदात्त हो जाता है इस प्रकार तीनों उदात्त रहते हैं। श्वः सुत्याम्। मघवन्। यहां भी उदात्त आकार से परे गकार अनुदात्त को स्वरित होके हां होजाता है। मघवन् शब्द आमंत्रित के होने से सब अनुदात्त होजाता है। जितने पदों का व्याख्यान किया है वे सब सुब्रह्मण्या ऋचा के ही हैं। अब एक अपूर्व बात लिखते हैं कि जो इस सूत्र से भी सिद्ध नहीं है ॥ १४ ॥

१५–वा०–सुत्यापराणामन्तः ॥

सुत्या शब्द जिन से परे हो उनको अन्तोदात्त हो। द्व्यहे सुत्याम्। त्र्यहे सुत्याम्। यहां द्व्यह, त्र्यह शब्दों को अन्तोदात्त होके उससे परे 'सु' अनुदात्त को स्वरित और स्वरित को उदात्त होजाता है ॥ १५ ॥

१६–वा०–असावित्यन्तः ॥

वाक्य में जो प्रथमान्त पद है वह अन्तोदात्त हो। गार्ग्यो यजते। गार्ग्य शब्द प्रथम आद्युदात्त प्राप्त है. उस का बाधक यह अन्तोदात्त होके उस उदात्त से परे यकार को स्वरित और स्वरित को इस से उदात्त हो जाता है और (यजते) क्रिया में अन्त्य के दो वर्ण अनुदात्त होजाते हैं ॥ १६ ॥

१७–वा०–अमुष्येत्यन्तः ॥

अमुष्य यह षष्ठी के एक वचन का संकेत है। जो षष्ठ्येकवचनान्त पद है वह अन्तोदात्त हो जैसे। दाक्षेः पिता यजते। यहां दाक्षी शब्द षष्ठी का एक वचन है उस इञ् प्रत्ययान्त को आद्युदात्तस्वर प्राप्त है उसको अन्तोदात्त होजाता है और पिता शब्द तृच् प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त ही है। अन्तोदात्त दाक्षि शब्द से परे 'पि' अनुदात्त को स्वरित होके उदात्त और अन्तोदात्त पितृ शब्द से परे अनुदात्त यकार को स्वरित होकर उदात्त होजाता है। इस प्रकार मध्य में चार उदात्त तथा आदि में एक अन्त में दो अनुदात्त रहते हैं। जैसे दाक्षेः पिता यजते ॥ १७ ॥

१८–वा०–स्यान्तस्योपोत्तमं चान्त्यश्च ॥

जहां षष्ठी का एकवचन स्यान्त हो वहां उपोत्तम अर्थात् तृतीय वा चतुर्थवर्ण

०४०|१६|२७

४२०
११-८

४१,४८५

२८,४८५ डि०

दात्त होता है और उस शब्द को भी अन्तोदात्त होजाता है। गार्ग्यस्य पिता यजते। यहां तृतीय वर्ण (स्य) और द्वितीय (र्ग्य) को उदात्त और (पिता यजते) यहां पूर्ववत् उदात्त होता है। इसलिये पांचवर्ण मध्य में उदात्त और आदि में एक अन्त में दो अनुदात्त रहते हैं। जैसे गार्ग्यस्य पिता यजते। वात्स्यस्य पिता यजते ॥ १८ ॥

१९—वा०—वा नामधेयस्य ॥

जो किसी के नामवाची स्यान्त षष्ठ्येकवचन में उपोत्तम तृतीय वर्ण आदि हैं वे विकल्प करके उदात्त होते हैं पक्ष में जैसा प्राप्त है वैसा बना रहता है। देवदत्तस्य पिता यजते। यहां दत्तस्य ये तीनों उदात्त और पिता यजते। यहां पूर्ववत् उदात्त होके मध्य में छः वर्ण उदात्त और आदि अन्त में दो २ अनुदात्त हो जाते हैं। जैसे देवदत्तस्य पिता यजते। यज्ञदत्तस्य पिता यजते। और पक्ष में देवदत्त शब्द अन्तोदात्त है सो ज्यों का त्यों ही बना रहता है और पिता यजते यहां पूर्ववत् स्वरित को उदात्त हो जाता है। जैसे देवदत्तस्य पिता यजते ॥ १९ ॥

२०—देवब्रह्मणोरनुदात्तः ॥ अ० ॥ १। २। ३८ ॥

भा०—देवब्रह्मणोरनुदात्तत्वमेके ॥

पूर्व सूत्र से सुब्रह्मण्या ऋचा में देव और ब्रह्मन् शब्द के स्वरित को उदात्त पाता है सो न हो किन्तु उस स्वरित को अनुदात्त ही होजावे। भाष्यकार का अभिप्राय यह है कि जो देव और ब्रह्मन् शब्द को अनुदात्त कहते हो सो किन्हीं आचार्यों का मत है अर्थात् विकल्प करके होना चाहिये। देव और ब्रह्मन् शब्द आमंत्रित हैं इससे विशेष वचन आमंत्रित ब्रह्मन् शब्द के परे पूर्व आमंत्रित देव शब्द को विकल्प करके अविद्यमानवत् होने से पर आमंत्रित को जहां एक पक्ष में निघात नहीं होता वहां दोनों आमंत्रित को आद्युदात्त होकर उदात्त से परे दूसरा २ वर्ण स्वरित होके उस को फिर इस सूत्र से अनुदात्त होजाता है जैसे देवा ब्रह्माणः। और दूसरे पक्ष में जहां पूर्व आमंत्रित को विद्यमान मानते हैं वहां पर आमंत्रित को निघात होकर पूर्व आमंत्रित को आद्युदात्त हो जाता है पीछे (दे) उदात्त से परे (वा) अनुदात्त को स्वरित होके जिन के मत में अनुदात्त होता है वहां तो देवाब्रह्माणः। ऐसा प्रयोग और जिन के मत में स्वरित को अनुदात्त नहीं होता वहां पूर्व सूत्र से स्वरित को उदात्त होकर देवा ब्रह्माणः। ऐसा प्रयोग होता है। और जिन आचार्यों का ऐसा मत है कि देव और ब्रह्मन् शब्द समानाधिकरण सामान्यवचन है वहां ये ही दो प्रयोग होते हैं क्योंकि अविद्यमानवत् का निषेध होने से पर आमंत्रित को नित्य ही निघात होजाता है ॥ २० ॥

२१–स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् ॥ अ० ॥ १ । २ । ३९ ॥

स्वरित से परे संहिता में एक दो और बहुत अनुदात्तों को भी पृथक् २ एक-श्रुति स्वर होता है ॥

भा०—एकशेषनिर्देशोऽयम् । अनुदात्तस्य चानुदात्तयोश्चानुदात्तानामिति ॥

भाष्यकार का अभिप्राय यह है कि जो इस सूत्र में बहुवचनान्त अनुदात्त शब्द पढ़ा है उसमें एकशेष समझना चाहिये अर्थात् एक दो और बहुत अनुदात्तों को भी पृथक् २ कार्य होता है । जैसे अग्निमीड़े पुरोहितम् । यहां 'मी' स्वरित से परे एक 'ड़े' अनुदात्त को एकश्रुतिस्वर हुआ है । एकश्रुति का नियम यही है कि स्वरित से परे उसपर कोई चिन्ह नहीं होता (होतारं रत्नधातमम्) यहां 'ता' स्वरित से परे दो रेफ अनुदात्त वर्णों को एकश्रुतिस्वर हुआ है तथा इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि । यहां मे स्वरित वर्ण है उससे परे द्रि पर्यंत सब अनुदात्त हैं उन सब को एकश्रुतिस्वर इस सूत्र से हुआ है । संहिता ग्रहण इसलिये है कि, इमम् । मे । गङ्गे । यमुने । सरस्वति । शुतुद्रि । यहां पृथक् २ पदों का अवसान होने से एकश्रुतिस्वर न हुआ ॥ २१ ॥

२२–उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ॥ अ० ॥ १ । २ । ४० ॥

उदात्त और स्वरित जिससे परे हों उस अनुदात्त को एकश्रुतिस्वर न हो किन्तु सन्नतर अर्थात् अनुदात्ततर होजावे । पूर्व सूत्र से सामान्य विषय में एक-श्रुतिस्वर प्राप्त है उसका इस सूत्र से विशेष विषय में निषेध किया है जैसे अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिः । यहां ऋषि शब्द आद्युदात्त के परे भिस् विभक्ति को एकश्रुति स्वर प्राप्त है सो न हुआ । किन्तु उसको अनुदात्ततर होगया । तथा मरुतः कं सुविता । यहां क शब्द स्वरित के परे 'त' अनुदात्त को स्वरित नहीं होता किन्तु अनुदात्ततर होजाता है ॥ २२ ॥

२३–आद्युदात्तश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३ ॥

धातुओं वा प्रातिपदिकों से जितने प्रत्यय होते हैं उन सब के लिये यह उत्सर्ग-सूत्र है कि सब प्रत्यय आद्युदात्त हों । जो एकाक्षर के ही प्रत्यय हैं वे आद्यन्त-वद्भाव से उदात्त होजाते हैं जैसे प्रियः । यहां एकाक्षर (क) प्रत्यय किया है । आखनिकवकः । यहां इकवक प्रत्यय आद्युदात्त हुआ है । इसके अपवाद विषय में अन्य प्रत्ययस्वरविधायकसूत्र बहुत हैं उनमें से थोड़े यहां भी आगे लिखे हैं ॥ २३ ॥

२४—अनुदात्तौ सुप्पितौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३ ॥

जो सुप् अर्थात् सु आदि इक्कीस और पित् प्रत्यय हैं वे अनुदात्त हों । जैसे सोमसुतौ । सोमसुतः । यहां सुप् में औ तथा जस् अनुदात्त होके उदात्त से परे स्वरित होगये हैं । भवति । पचति । इत्यादि । यहां शप् और तिप् पित् प्रत्यय होने से अनुदात्त हुए हैं ॥ २४ ॥

२५—अनुदात्तं पदमेकवर्जम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १५८ ॥

स्वरप्रकरण में यह परिभाषासूत्र सर्वत्र प्रवृत्त होता है । जो दो वा अनेक कितने ही पदों का समास होता है वह भी एक पद कहाता है । स्वरप्रकरण में जिस एक पद में उदात्त वा स्वरित जिस वर्ण को विधान करें उससे पृथक् जितने वर्ण हों वे सब अनुदात्त होजावें । इस बात का स्मरण सब स्वरप्रकरण में रखना चाहिये । इस सूत्र का प्रयोजन महाभाष्यकार दिखलाते हैं ॥

का०—आगमस्य विकारस्य प्रकृतेः प्रत्ययस्य च ।
पृथक्स्वरनिवृत्त्यर्थमेकवर्जं पदस्वरः ॥

गोलार्थ, आगम, विकार, प्रकृति और प्रत्यय का पृथक् स्वर न होने के लिये इस सूत्र का आरम्भ किया है । आगम जो टित् कित् मित् चिन्ह के साथ अपूर्व उपजन होजाता है, उसका पृथक् स्वर होजावे । जैसे चत्वारः । अनड्वाहः । यहां चतुर् और अनडुह् शब्द को आम् आगम हुआ है उसी का पृथक् स्वर रहता और प्रकृतिस्वर की निवृत्ति हो जाती है अर्थात् प्रकृति और आगम के दोनों स्वर एक पद में एक साथ नहीं रह सकते । विकार जो किसी वर्ण वा शब्द को आदेश हो जाता है जैसे अस्थ्ना । दध्ना । अस्थनि । दधनि । यहां अस्थि और दधि शब्द प्रथम आद्युदात्त हैं पश्चात् तृतीयादि अजादि विभक्तियों में इन को अनङ् आदेश हो के प्रकृति और आदेश के दो स्वर प्राप्त हैं सो नहीं होते किन्तु प्रकृति स्वर को बाध के आदेश का उदात्त स्वर हो जाता है । प्रकृति धातु वा प्रातिपदिक जिससे प्रत्यय उत्पन्न होते हैं । जैसे गोपायति । धूपायति । यहां प्रकृतिस्वर गोपाय धूपाय धातु को अन्तोदात्त और प्रत्ययस्वर आय प्रत्यय को आद्युदात्त दो स्वर प्राप्त हैं सो न हों किन्तु प्रत्ययस्वर को बाध के प्रकृतिस्वर होजावे । प्रत्यय जो धातु वा प्रातिपदिक से परे विधान किया जाता है । जैसे कर्त्तव्यम् । तैत्तिरीयः । यहां कृधातु और तित्तिरि प्रातिपदिक से तव्य और छ प्रत्यय हुआ है प्रकृति और प्रत्यय के दोनों स्वर प्राप्त हैं सो न हों किन्तु प्रकृति स्वर को बाध के प्रत्यय का आद्युदात्त स्वर होजावे ॥२५॥

वा०—२६—सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्वञ्च ॥

भा०—सत्येकस्मिन् स्वरे विशिष्टो द्वितीयः स्वरो बलवान् भवति ॥

सतिशिष्ट वह कहाता है कि एक स्वर के वर्त्तमान में द्वितीय विशेषविधान किया जावे वही बलवान् रहता है। प्रथम का स्वर निवृत्त हो जाता और पश्चात् विहितस्वर प्रधान रहता है ॥

भा०—तच्चानेकप्रत्ययसमासार्थम् ॥

सतिशिष्ट का प्रयोजन यह है कि अनेक प्रत्यय और अनेक समासों में उत्तरोत्तर स्वर बलवान् होते जावें। जैसे अनेक प्रत्यय। औपगवः। यहां उपगु शब्द से अण् हुआ है उसी का स्वर रहता है। औपगव शब्द से त्व। औपगवत्वम्। यहां स्वर का बाधक त्व प्रत्यय का स्वर। औपगवत्वमेव, औपगवत्वकम्। यहां त्व प्रत्यय के स्वर का बाधक के प्रत्यय का स्वर रहता है तथा पुरूणां राजा, पौरवः। यहां अण् प्रत्यय का स्वर प्रकृतिस्वर का बाधक। पौरवस्यापत्यम्। इञ्। आद्युदात्त पौरविः। तस्य युवापत्यं फक्। अन्तोदात्त। पौरवायणः। पौरवायणानां समूहः वुञ्। आद्युदात्त। पौरवायणकम्। पौरवायणकानां छात्राः। पौरवायणकीयाः। यहां छ प्रत्यय आद्युदात्त। पौरवायणकीयैः प्रोक्तमधीयते तेपि, पौरवायणकीयाः। अण् का स्वर अन्त में रहता है। इसी प्रकार बहुत कुछ प्रत्ययमाला बन सकती है। अनेक समास। वीरश्चासौ राजा, वीरराजः। टच्—अन्तोदात्त। वीरराजस्य पुरुषो। वीरराजपुरुषः। वीरराजपुरुषस्य पुत्रः, वीरराजपुरुषपुत्रः। वीरराजपुरुषपुत्रः प्रधानो येषां ते, वीरराजपुरुषपुत्रप्रधानाः। यहां पूर्वपदप्रकृतिस्वर होता है। इसी प्रकार के इन से बहुत बड़े २ समास हो सकते हैं। और उनके स्वर भी तदनुकूल हो जावेंगे ॥ २६ ॥

वा०—२७—विभक्तिस्वरान्नञ्स्वरो बलीयान् ॥

विभक्तिस्वर से नञ्स्वर बलवान् होता है। जैसे न तिस्रः, अतिस्रः, यहां विभक्तिस्वर—जस् विभक्ति को उदात्त प्राप्त है उसका बाधक नञ्स्वर पूर्वपदप्रकृतिभाव हो जाता है ॥ २७ ॥

वा०—२८—विभक्तिनिमित्तस्वराच्च नञ्स्वरो बलीयानिति वक्तव्यम् ॥

विभक्ति जिस का निमित्त है उस को जो स्वर होता है उस को बाध के नञ्स्वर होना चाहिये। जैसे अचत्वारः। अनड्वाहः। यहां विभक्ति को मानके जो आम् आगम होता है उस का बाधक नञ् प्रकृतिस्वर हो जाता है ॥ २८ ॥

२९–ञ्नित्यादिर्नित्यम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १९७ ॥

ञित् नित् प्रत्ययों के परे पूर्व प्रकृति को आद्युदात्तस्वर हो यह सूत्र (२४) सूत्र का अपवाद है । और इसके अपवाद आगे कुछ लिखेंगे । उदाहरण । ञित्-ष्यञ्–ब्राह्मण्यम् । चातुर्वर्ण्यम् । त्रैलोक्यम् । यञ्–गार्ग्यः । शाकल्यः । माधव्यः । बाभ्रव्यः । इत्यादि । । इञ्–दाक्षिः । सौधातकिः । वैयासकिः । फिञ्–तैकायनिः । कैतवायनिः । इत्यादि । नित् । वुन्–वासुदेवकः । अर्जुनकः । ठन्–वस्निकः । कन्–द्रव्यकः । इत्यादि शब्द आद्युदात्त होजाते हैं ॥ २९ ॥

३०–कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १५९ ॥

घञन्त कर्ष धातु और आकारवान् घञन्त शब्दों के अन्त में उदात्तस्वर हो । कर्ष धातु के कहने से भ्वादिगण वाले का ग्रहण होता है । गुणनिषेध वाले तुदादि का ग्रहण नहीं होता । जैसे कर्षः । त्यागः । रागः । दायः । धायः । पाकः । पाठः । इत्यादि । आकारवान् कहने से कर्ष को नहीं प्राप्त था इसलिये पृथक् ग्रहण किया है । आकारवान् ग्रहण इसलिये है कि मन्थः । योगः । यहां न हो ॥ ३० ॥

३१–उञ्छादीनां च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६० ॥

उञ्छ आदि गणपठित शब्दों को अन्तोदात्त स्वर हो । जैसे उञ्छः । म्लेच्छः । जञ्जः । जल्पः । इन चार घञन्त शब्दों में आद्युदात्त प्राप्त था सो न हुआ । जपः । व्यधः । ये दो शब्द अप् प्रत्ययान्त हैं इन को भी आद्युदात्त स्वर प्राप्त था ॥

गणसूत्र–युगः कालविशेषे रथाद्युपकरणे च ॥ १ ॥

युग शब्द कालविशेष अर्थात् कलियुग द्वापरयुग इत्यादि वा पीढ़ी तथा रथ आदि के उपकरण अर्थात् अवयव जुआ आदि अर्थ में अन्तोदात्त होता है अन्यत्र नहीं होता । युगः । घञन्त होने से आद्युदात्त प्राप्त था ॥

सू०—गरो दूष्ये ॥ २ ॥

दूष्य अर्थात् विष अर्थ में गर शब्द अन्तोदात्त हो । जैसे गरः । अन्यत्र आद्युदात्त रहेगा ॥

सू०–वेगवेदवेष्टबन्धाः करणे ॥ ३ ॥

करणकारक में प्रत्यय, किया हो तो घञन्त वेग आदि चार शब्द अन्तोदात्त हों । विजयते येन स, वेगः । वेत्ति येन स, वेदः । वेष्टते येन स, वेष्टः । बन्धाति येन स, बन्धः । और भाव वा अधिकरण में प्रत्यय होगा तो आद्युदात्त ही समझे जावेंगे ॥

ञित-नित प्रत्ययों से परे पूर्व को उदात्त हो

सू०—स्तुयुद्रुवश्छन्दसि ॥ ४ ॥

क्तिवन्त स्तु आदि तीन धातुओं को अन्तोदात्तस्वर हो। जैसे परिष्टुत्। संयुत्। परिद्रुत्। यहां उपसर्गों को प्रकृतिभाव प्राप्त था ॥

सू०—वर्त्तनिः स्तोत्रे ॥ ५ ॥

जो स्तुतिप्रकरण में वर्त्तनि शब्द पढ़ा हो तो अन्तोदात्त स्वर हो। जैसे वर्त्तनिः। अन्यत्र अनि प्रत्यय आद्युदात्त होने से मध्योदात्त स्वर होगा। वर्त्तनिः।

सू०—श्वभ्रे दरः ॥ ६ ॥

श्वभ्र अभिधेय हो तो दर शब्द अन्तोदात्त हो। जैसे दरः। अन्यत्र आद्युदात्त ही समझा जाता है। जैसे दरः ॥

सू०—साम्बतापौ भावगर्हायाम् ॥

भावगर्हा अर्थात् धात्वर्थकी निन्दा में साम्ब और ताप शब्द अन्तोदात्त हों। जैसे साम्बः। तापः। अन्यत्र आद्युदात्त ही समझे जावेंगे ॥

सू०—उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र ॥

उत्तम और शश्वत्तम ये दोनों शब्द सामान्य अर्थों में अन्तोदात्त हों। जैसे उत्तमः। शश्वत्तमः। तथा भक्तः। मन्थः। भोगः। देहः। इत्यादि ॥ ३१ ॥

३२—अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः॥ अ०॥ ६। १। १६१ ॥

जिस अनुदात्त के परे उदात्त का लोप हो उस अनुदात्त को उदात्त हो। जैसे। औपगव—ई। यहां ई अनुदात्त के परे अन्तोदात्त औपगव शब्द के अन्त्य वर्ण का लोप होकर ईकार उदात्त हो जाता है। औपगवी। तथा दाक्षायणी। प्लाक्षायणी। कुमारी। इत्यादि। अस्थन्, दधन् शब्द दोनों अन्तोदात्त हैं तृतीयादि अजादि विभक्तियों में उपधा अकार का लोप होकर। अस्थ्ना। दध्ना। अस्थ्ने। दध्ने। इत्यादि। इसी प्रकार इस सूत्र का बहुत विषय है जहां कहीं अनुदात्त के परे उदात्त का लोप हो वहां सर्वत्र इसी से उदात्त समझा जावेगा। यत्र ग्रहण इसलिये है कि भार्गवः। भार्गवौ। भृगवः। यहां जस् विभक्ति के आने से प्रथम ही प्रत्यय का लुक् होजाता है। उदात्तग्रहण इसलिये है कि जहां अनुदात्त के परे अनुदात्त ही का लोप हो वहां उदात्त न हो॥ ३२ ॥

३३—धातोः ॥ अ० ॥ ६। १। १६२ ॥

धातु को अन्तोदात्त स्वर हो। पचति। पठति। चिचीषति। तुष्टूषति। ऊर्णोति। पापच्यते। जागर्त्ति। गोपायति। इत्यादि इनमें जितने अंश की धातु संज्ञा है उसी को अन्तोदात्त हुआ है॥ ३३ ॥

३४—चितः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६३ ॥

चित् अर्थात् चकार इत् हो के लोप जिस में हो उस समुदाय को अन्तोदात्त स्वर हो । प्रत्यय के आद्युदात्त स्वर का अपवाद यह सूत्र है । घुरच्—भङ्गुरः । भासुरः । मेदुरः । कौण्डिन्य को कुण्डिनच् आदेश । कुण्डिनाः । अकच्—सर्वकः । उच्चकैः । नीचकैः । बहुच—बहुकृतम् । बहुभुक्तम् । बहुपटु । इत्यादि ॥ ३४ ॥

३५—तद्धितस्य च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६४ ॥

जो तद्धित संज्ञक चित् प्रत्यय है वह अन्तोदात्त हो । जैसे चफञ्—कौञ्जायनः । मौञ्जायनः । इत्यादि । पूर्वसूत्र में चित् के कहने से यहां भी अन्तोदात्त होजाता फिर इस सूत्र का पृथक् आरम्भ इसलिये किया है कि जहां दो अनुबन्धों से दो स्वर प्राप्त हों वहां भी चित् का स्वर अन्तोदात्त ही हो । जैसे चफञ् प्रत्ययान्तों को हुआ ॥ ३५ ॥

३६—कितः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६५ ॥

जो तद्धित संज्ञक कित् प्रत्यय है वह अन्तोदात्त हो । जैसे फक्—नाडायनः । चारायणः । दाक्षायणः । ठक्—रैवतिकः । आक्षिकः । कौद्दालिकः । पारिघिकः ॥ ३६ ॥

३७—सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६८ ॥

जो सु अर्थात् सप्तमी के बहुवचन में एकाच् शब्द हो उससे परे जो तृतीयादि विभक्ति सो अन्तोदात्त हो जैसे वाचा । वाग्भ्याम् । वाग्भिः, वाचे, वाचः, त्वचे, त्वचः । इत्यादि । सु ग्रहण इसलिये है कि, राज्ञा । राज्ञे । यहां न हो । एकाच् ग्रहण इसलिये है कि क्रिरिणा । गिरिणा । यहां विभक्ति उदात्त न हो । तृतीयादि ग्रहण इसलिये है कि वाचौ । वाचः । यहां न हो । विभक्ति ग्रहण इसलिये है कि वाक्तरा । यहां न हो । सप्तमी का बहुवचन सु इसलिये लिया है कि त्वया । यहां भी विभक्ति उदात्त न हो ॥ ३७ ॥

३८—शतुरनुमोनद्यजादी ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७३ ॥

नुम् रहित जो शतृप्रत्ययान्त प्रातिपदिक उससे परे जो नदीसंज्ञक प्रत्यय और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति वह उदात्त हो । नदीसंज्ञक ङीप् । तुदती । नुदती । लुनती । इत्यादि अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति । लुनते । लुनतः । लुनतोः । लुनति । अनुम् ग्रहण इसलिये है कि, तुदन्ती । नुदन्ती इत्यादि में नदी उदात्त न हो । नद्यजादि ग्रहण इसलिये है कि, तुदद्भ्याम् । तुदद्भिः । यहां विभक्ति उदात्त न हो ॥ ३८ ॥

३९–वा०–नद्यजाद्युदात्तत्वे बृहन्महतोरुपसंख्यानम् ॥

जो बृहत् और महत् शब्द से परे नदी और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति है वह उदात्त हो। जैसे बृहती। महती। बृहता। बृहते। महता। महते। इत्यादि पृषत्। आदि शब्दों को शतृ प्रत्ययान्त के सब कार्य होते हैं। फिर इस वार्त्तिक के कहने का प्रयोजन यह है कि पृषत् आदि सब शब्दों से परे नदी और अजादि विभक्ति उदात्त न हों किन्तु बृहत् और महत् से ही हो ॥ ३९ ॥

४०–उदात्तयणो हल् पूर्वात् ॥ अ० ॥ ६। १। १७४ ॥

हल् वर्ण जिसके पूर्व हो ऐसा जो उदात्त के स्थान में यण् उससे परे जो नदी संज्ञक प्रत्यय और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति सो उदात्त हो जैसे नदी–कर्त्री। हर्त्री। प्रकर्त्री। लवित्री। प्रसवित्री। इत्यादि। यहां सर्वत्र तृच् अन्तोदात्त के स्थान में यण् हुआ है। अजादि असर्वनाम स्थान विभक्ति। कर्त्रा। कर्त्रे। कर्त्रोः। लवित्रा। लवित्रे। लवित्रोः। इत्यादि। यहां उदात्तग्रहण इसलिये है कि, कर्त्री। हर्त्री। कर्त्री। हर्त्री। यहां तृन्नन्त शब्दों के आद्युदात्त न होने से अनुदात्त के स्थान में यण् हुआ है। यहां हल्पूर्वग्रहण इसलिये है कि, बहुतीतर्वा। बहुतितर्वे। यहां उदात्त के स्थान में बहुतितउ शब्द के उकार को यण् तो हुआ है परन्तु वह उदात्त केवल अच् था। फिर विभक्ति को उदात्त का निषेध होके आष्टमिक सूत्र से स्वरित होता है ॥ ४० ॥

४१–नकारग्रहणं च कर्त्तव्यम् ॥

जो नकारान्त से परे नदी संज्ञक प्रत्यय हो वह उदात्त हो। वाक्पत्नी। चित्पत्नी। यहां उदात्त के स्थान में यण् नहीं है ॥ ४१ ॥

४२–ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् ॥ अ० ॥ ६। १। १७६ ॥

जो ह्रस्वान्त अन्तोदात्त प्रातिपदिक और नुट् का आगम इन से परे जो मतुप् प्रत्यय होता वह उदात्त हो। पित् प्रत्यय के अनुदात्त होने का यह अपवाद है। ह्रस्व। अग्निमान्। वायुमान्। भानुमान्। कर्तृमान्। इत्यादि। नुट्। अक्षण्वता। शीर्षण्वतः। मूर्द्धन्वती ॥ ४२ ॥

४३–वा०–मतुबुदात्तत्वे रे ग्रहणम् ॥

रे शब्द से परे जो मतुप् हो तो वह भी उदात्त हो। आरेवानेँ तु नो विशः। यहां रेवान् शब्द में ह्रस्व के नहीं होने से नहीं प्राप्त था ॥ ४३ ॥

४४–वा०–त्रिप्रतिषेधश्च ॥

त्रि शब्द से परे मतुप् उदात्त न हो। त्रिवतीः। यहां उदात्त न हुआ ॥ ४४ ॥

४५—नामन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७७ ॥

मतुप् प्रत्यय के परे जो हृस्व अङ्ग उससे परे षष्ठी का बहुवचन नाम् विभक्ति हो तो वह विकल्प करके उदात्त हो । जैसे अग्नीनाम् । अग्नीनाम् । वायुनाम् । वायूनाम् । तिसृणाम् । तिसृणाम् । चतसृणाम् । चतसृणाम् । यहां हृस्व ग्रहण इसलिये है कि कुमारीणाम् । किशोरीणाम् । इत्यादि में विभक्ति उदात्त न हो ॥ ४५ ॥

४६—ङ्याश्छन्दसि बहुलम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७८ ॥

जो ङ्यन्त से परे नाम् हो तो वह बहुल कर के उदात्त हो अर्थात् कहीं हो और कहीं न हो । देवसेनानामभिभञ्जतीनाम् । यहां होगई तथा नदीनां परिजयन्तीनां मरुतः । यहां विभक्ति उदात्त नहीं होती ॥ ४६ ॥

४७—तित्स्वरितम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १८५ ॥

जो तित् प्रत्यय है वह स्वरित हो । यह आद्युदात्तप्रत्ययस्वर का अपवाद है । यत्—चिकीर्ष्यम् । जिहीर्ष्यम् । चिचीर्ष्यम् । तुष्टूर्ष्यम् । ण्यत्—कार्यम् । हार्यम् । इत्यादि ॥ ४७ ॥

४८—तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्त-महन्विङोः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १८६ ॥

तास् प्रत्यय, अनुदात्तेत् धातु, ङित् धातु और अदुपदेश धातु इनसे परे जो सार्वधातुक संज्ञक लकार के स्थान में तिप् आदि प्रत्यय वे अनुदात्त हों परन्तु यह कार्य हृनुङ् और इङ् धातु को छोड़ के होवे क्योंकि ये दोनों ङित् हैं । जैसे तास् प्रत्यय—कर्त्ता । कर्त्तारौ । कर्त्तारः । अनुदात्तेत्—आस्ते । आसाते । आसते । ङित्—शेते । सूते । दीधीते । वेवीते । अदुपदेश—पठतः । पठन्ति । पचतः । पचन्ति । तासि आदि से परे ग्रहण इसलिये है कि सुनुतः । सुन्वन्ति । यहां न हो लसार्वधातुक ग्रहण इसलिये है कि सुषुवे । सुषुवाते । यहां न हो और हृनुङ् तथा इङ् का निषेध इसलिये है कि हृनुते । अधीते । यहां अनुदात्त न हो ॥ ४८ ॥

४९—लिति ॥ अ० ॥ ६ । १ । १९३ ॥

लकार जिस का इत् गया हो उस प्रत्यय से पूर्व उदात्त हो । जैसे चिकीर्षकः जिहीर्षकः । यहां चिकीर्ष जिहीर्ष धातु से ण्वुल् हुआ है । भौरिकिविधम् । यहां तद्धित का विधल् प्रत्यय है । ऐषुकारिभक्तः । और यहां तद्धित का भक्तल् प्रत्यय हुआ है इत्यादि ॥ ४९ ॥

५०—आमंत्रितस्य च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १९८ ॥

जो आमंत्रित अर्थात् सम्बोधन में प्रथमा विभक्त्यन्त शब्द हों उन को आद्युदात्तस्वर हो जाता है । जैसे अग्ने । वायो । इन्द्र । देवदत्त । देवदत्तौ । देवदत्ताः । धनञ्जय । इत्यादि ॥ ५० ॥

५१—यतोऽनावः ॥ अ० ॥ ६ । १ । २१३ ॥

दो स्वर वाले यत् प्रत्ययान्त शब्दों को आद्युदात्तस्वर हो परन्तु नौ शब्द को छोड़ के । जैसे देयम् । धेयम् । चेयम् । जेयम् । शरीरावयवाद्यत् । कण्ठ्यम् । ओष्ठ्यम् । जङ्घ्यम् । जिह्व्यम् । इत्यादि (तित्स्वरितम्) इस पूर्व लिखितसूत्र से द्व्यच् प्रातिपदिकों को भी स्वरित पाता सो उसका अपवाद यह सूत्र है । द्व्यच् ग्रहण इसलिये है कि उरस्यम् । ललाट्यम् । नासिक्यम् । यहां आद्युदात्त न हो । नौ शब्द का निषेध इसलिये है कि नाव्यम् । यहां भी आद्युदात्त न हो ॥ ५१ ॥

५२—समासस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २२३ ॥

समास किये शब्दमात्र को अन्तोदात्तस्वर हो । अब समास के स्वर का थोड़ासा विषय लिखा जाता है । समास के स्वर का सामान्यसूत्र यह है । और यह सब समास के स्वर का उत्सर्ग सूत्र है आगे सब प्रकरण इसका अपवाद है । राजपुरुषः । ब्राह्मणकम्बलः । नदीघोषः । पटहशब्दः । वीरपुरुषः । परमेश्वरः । इत्यादि ॥ ५२ ॥

५३—परिभा०—स्वरविधौ व्यंजनमविद्यमानवत् ॥

उदात्तादि स्वरों के विधान में व्यंजनवर्णों को अविद्यमानवत् समझना चाहिये । जैसे राजदृषत् । ब्राह्मणसमित् । यहां समासान्त हल् वर्ण के होने से उस हल् को उदात्त प्राप्त है उस को अविद्यमानवत् मान के उस से पूर्ववर्ण को उदात्त होजाता है । इसी प्रकार और भी बहुतसे प्रयोजन हैं । अब समासस्वर का विशेष नियम कुछ लिखते हैं ॥ ५३ ॥

५४—बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १ ॥

जो बहुव्रीहि समास में पूर्वपद का स्वर हो वह प्रकृति करके अर्थात् अन्तोदात्त न हो ज्योंका त्यों बना रहे । जैसे स्थूलपृषती । हिरण्यबाहुः । ब्रह्मचारिपरिस्कन्दः । स्नातकपुत्रः । पण्डितपुत्रः । अध्यापकपुत्रः । इत्यादि ॥ ५४ ॥

५५—तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः ॥ अ० ॥ ६ । २ । २ ॥

तत्पुरुष समास में जो तुल्यार्थ, तृतीयान्त, सप्तम्यन्त, उपमानवाची, अव्यय, द्वितीयान्त और कृत्यप्रत्ययान्त पूर्वपद हो तो उस में प्रकृतिस्वर हो। जैसे तुल्यार्थ—तुल्यश्वेतः। तुल्यलोहितः। तुल्यमहान्। सदृक्श्वेतः। सदृग्लोहितः। यहां तुल्यार्थ शब्दों के साथ कर्मधारयतत्पुरुष समास हुआ है। तृतीयातत्पुरुष—शङ्कुलया खण्डः, शङ्कुलाखण्डः। किरिकाणः। सप्तमीतत्पुरुष—अक्षशौण्डः। पानशौण्डः। उपमान वाची—घनश्यामः। तडिद्गौरी। शस्त्रीश्यामा। कुमुदश्येनी। इत्यादि। अव्यय पर—॥ ५५॥

५६—वा०—अव्यये नञ्कुनिपातानाम्॥

अव्यय के कहने से सामान्य अव्यय का ग्रहण न हो इसलिये इस वार्त्तिक से परिगणन किया है कि अव्ययों में नञ्, कु और निपातों का ही पूर्वपदप्रकृतिस्वर हो। जैसे नञ्—अब्राह्मणः। अवृशलः। कु—कुब्राह्मणः। कुवृशलः। निपात—निष्कौशाम्बिः। निर्वाराणसिः। परिगणन इसलिये है कि स्नात्वाकालकः। पीत्वास्थिरकः। यहां पूर्वपदप्रकृतिस्वर न हो। द्वितीयान्त—मुहूर्त्तसुखम्। मुहूर्त्तरमणीयम्। सर्वरात्रकल्याणी। सर्वरात्रशोभना। यहां अत्यन्तसंयोग में द्वितीया का समास है। कृत्यान्त—भोज्यञ्च तदुष्णं च, भोज्योष्णम्। भोज्यलवणम्। पानीयशीतम्। हरणीयचूर्णम्। इत्यादि॥ ५६॥

५७—गतिरनन्तरः॥ अ०॥ ६।२।४९॥

जो कर्मवाची क्तान्त उत्तरपद परे और अनन्तर अर्थात् समीप गति हो तो वह प्रकृतिस्वर हो। जैसे प्रकृतः। प्रहृतः। इत्यादि। अनन्तरग्रहण इसलिये है कि अभ्युद्धृतम्। उपसमाहृतम्। इत्यादि में पूर्वपदप्रकृतिस्वर न हो। कर्मवाची का ग्रहण इसलिये है कि प्रकृतः कटं देवदत्तः। यहां कर्त्ता में क्त प्रत्यय है इसलिये नहीं होता यह पूर्वपदप्रकृतिस्वर पूरा हुआ अब पूर्वपद आद्युदात्त आदि प्रकरण कुछ २ लिखेंगे॥ ५७॥

५८—आदिरुदात्तः॥ अ०॥ ६।२।६४॥

पूर्वपद आद्युदात्त होने के लिये यह अधिकार सूत्र है॥ ५८॥

५९—णिनि॥ अ०॥ ६।२।७९॥

णिनि प्रत्ययान्त उत्तरपद परे हो तो पूर्वपद आद्युदात्त हो। जैसे उष्णभोजी। शीतभोजी। स्थण्डिलशायी। पण्डितमानी। सोमयाजी। कुमारघाती। शीर्षघाती। फलहारी। पर्णहारी। इत्यादि॥ ५९॥

६०—अन्तः ॥ अ० ॥ ६ । २ । ९२ ॥

पूर्वपद अन्तोदात्तप्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ॥ ६० ॥

६१—सर्वं गुणकार्त्स्न्ये ॥ अ० ॥ ६ । २ । ९३ ॥

जो गुणों की संपूर्णता अर्थ में वर्त्तमान पूर्वपद सर्व शब्द हो तो वह अन्तोदात्त हो । जैसे सर्वश्वेतः । सर्वकृष्णः । सर्वलोहितः । सर्वहरितः । सर्वश्यामः । सर्वसारङ्गः । सर्वकल्माषः । सर्वमहान् । इत्यादि ॥ ६१ ॥

६२—उत्तरपदादिः ॥ अ० ॥ ६ । २ । १११ ॥

उत्तरपद आद्युदात्तप्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ॥ ६२ ॥

६३—अकर्मधारये राज्यम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १३० ॥

कर्मधारय समास से भिन्न तत्पुरुष समास में जो राज्य उत्तरपद हो तो वह आद्युदात्त हो । जैसे ब्राह्मणराज्यम् । क्षत्रियराज्यम् । यवनराज्यम् । कुरुराज्यम् । इत्यादि अब उत्तरपद तथा उभयपद प्रकृतिस्वर के विषय में कुछ लिखते हैं ॥ ६३ ॥

६४—गतिकारकोपपदात्कृत् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १३९ ॥

जो तत्पुरुषसमास में गति, कारक और उपपद से परे कृदन्त उत्तरपद हो तो वह प्रकृतिस्वर हो । जैसे गति—प्रकारकः । प्रहारकः । प्रकरणम् । प्रहरणम् । कारक—इध्मप्रव्रश्चनः । पलाशशातनः । श्मश्रुकल्पनः । उपपद—ईषत्करः । दुष्करः । सुकरः । गतिकारकोपपद ग्रहण इसलिये है कि देवदत्तस्य कारको, देवदत्तकारकः । यहां न हो ॥ ६४ ॥

६५—उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४० ॥

वनस्पति आदि समास किये हुये शब्दों में पूर्वपद उत्तरपद दोनों एककाल में प्रकृतिस्वर हों । वनस्पतिः । यहां वन और पति दोनों शब्द आद्युदात्त हैं । पति शब्द को समास में सुट् होजाता है । बृहस्पतिः । यहां भी सुट् हुआ है । शचीपतिः । तनूनपात् । नराशंसः । शुनःशेपः । शण्डामर्कौ । तृष्णावरूत्री । बम्बाविश्ववयसौ । मर्मृत्युः ॥ ६५ ॥

६६—देवताद्वन्द्वे च ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४१ ॥

देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में एककाल में दोनों शब्द प्रकृतिस्वर हों । इन्द्रासोमौ । इन्द्रावरुणौ । इन्द्राबृहस्पती । द्यावापृथिव्यौ । सोमारुद्रौ । इन्द्रापूषणौ । शुक्रामन्थिनौ । इत्यादि ॥ ६६ ॥

६७—अन्तः ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४३ ॥

उत्तरपद अन्तोदात्त प्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ॥ ६७ ॥

६८—थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४४ ॥

गति, कारक और उपपद से परे जो थ, अथ, घञ्, क्त, अच्, अप्, इत्र और क इतने प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद उन को अन्तोदात्तस्वर हो। जैसे थ—सुनीथः। अवभृथः। अथ—आवसथः। उपवसथः। घञ्—प्रभेदः। काष्ठभेदः। रज्जुच्छेदः। क्त—दूरादागतः। विशुष्कः। आतपशुष्कः। अच्—प्रणयः। विनयः। विजयः। आश्रयः। व्यत्ययः। अन्वयः। इत्यादि। अप्—प्रलवः। प्रसवः। इत्र—प्रलवित्रम्। प्रसवित्रम्। क—गोदः। कम्बलदः। शंस्थः। गृहस्थः। वनस्थः। इत्यादि। अब इसके आगे अनुदात्त का प्रकरण संक्षेप से लिखते हैं ॥ ६८ ॥

६९—पदात् ॥ अ० ॥ ८ । १ । १७ ॥

यह अधिकार सूत्र है यहां से आगे पद से परे कार्य होगा ॥ ६९ ॥

७०—पदस्य ॥ अ० ॥ ८ । १ । १६ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है। यहां से आगे जो कार्य कहेंगे वह पदके स्थान में समझा जावेगा ॥ ७० ॥

७१—अनुदात्तं सर्वमपादादौ ॥ अ० ॥ ८ । १ । १८ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है। अपादादि अर्थात् जो पाद की आदि में न हो किन्तु मध्य वा अन्त में हो तो पद से परे सब पद अनुदात्त हो। यह अधिकार चलेगा ॥ ७१ ॥

७२—आमंत्रितस्य च ॥ अ० ॥ ८ । १ । १९ ॥

जो पद से परे अपादादि में वर्त्तमान आमंत्रित पद हो तो वह सब अनुदात्त होवे। जैसे—पठसि देवदत्त। जुहोसि देवदत्त। आमंत्रित पद को पूर्वोक्त (५०) सूत्र से आद्युदात्त प्राप्त था इसलिये यह विधान है ॥ ७२ ॥

७३—परिभाषा—आमंत्रितं पूर्वमविद्यमानवत् ॥ अ० ॥ ८ । १ । ७२ ॥

पद से परे जिस पद को अनुदात्त आदि विधान करते हैं उससे पूर्व जो आमंत्रित हो तो उस को अविद्यमानवत् समझना चाहिये। अर्थात् पूर्व कुछ नहीं है ऐसा माना जावे। जैसे देवदत्त यज्ञदत्त। यहां यज्ञदत्त शब्द को पद से परे निघात नहीं

हुआ । तथा देवदत्त पचसि । यहां अविद्यमानवत् होने से क्रिया को निघात
होता । तथा । देवदत्त तव ग्रामस्वम् । देवदत्त मम ग्रामस्वम् । यहां पद से
मे, आदेश नहीं होते । इत्यादि ॥ ७३ ॥

७४–नामंत्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम् ॥

अ० ॥ ८ । १ । ७३ ॥

सामान्यवचन समानाधिकरण आमंत्रित पद परे हो तो पूर्व जो आमंत्रि
है वह अविद्यमानवत् न हो । जैसे अग्नेव्रतपते । अग्नेगृहपते । पृथिवि देवय
अर्थात् पद से परे निघात आदि कार्य हो जावें । समानाधिकरण ग्रहण इस
कि पूर्व सूत्र के विषय में यह सूत्र न लगे । सामान्यवचनग्रहण का प्रयोजन
है कि अघन्ये देवि सरस्वति ईडे काव्ये विहव्ये । यहां पर्यायवाची शब्दों में न हो ॥

७५–विभाषितं विशेषवचने बहुवचनम् ॥ अ० ॥ ८ । १ । ७

विशेषवचन समानाधिकरण आमंत्रित पद परे हो तो पूर्व जो आमंत्रित
वह विकल्प करके अविद्यमानवत् हो । जैसे देवा ब्राह्मणाः । देवा ब्राह्मणाः । ब्रा
वैयाकरणाः । ब्राह्मणा वैयाकरणाः । यहां अविद्यमानवत् पक्ष में दोनों पद के
और विद्यमानवत् पक्ष में उत्तरपद निघात हो जाता है । इत्यादि । विशेषवचन
इसलिये है कि माणवक जटिलक । यहां विकल्प न हो ॥ ७५ ॥

७६–युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ ॥

अ० ॥ ८ । १ । २० ॥

षष्ठी चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के सह वर्त्तमान अपादादि में पद
जो युष्मद् अस्मद् पद उनको क्रम से वाम् और नौ आदेश हों और वे सब
दात्त हों । जैसे षष्ठीस्थ—ग्रामो वां स्वम् । जनपदो नौ स्वम् । चतुर्थीस्थ–ग्रा
दीयते । जनपदो नौ दीयते । द्वितीयास्थ–माणवको वां पश्यति । माणवको नौ प
इत्यादि । इस सूत्र में स्थग्रहण इसलिये है कि दृष्टो मया युष्मत्पुत्रः । यहां
का लुक् होजाने से आदेश और अनुदात्त नहीं होता ॥ ७६ ॥

७७–बहुवचनस्य वस्नसौ ॥ अ० ॥ ८ । १ । २१ ॥

षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के सह वर्त्तमान अपादादि में पद
बहुवचनान्त जो युष्मद् अस्मद् पद उनको क्रम से वस् और नस् आदेश हों

ब अनुदात्त हों । जैसे नमो वः पितरः । नमो वो देवाः । मा नो वधीः । मा गोषु मानो अश्वेषु रीरिषः । शन्नः । इत्यादि ॥ ७७ ॥

७८—तेमयावेकवचनस्य ॥ अ० ॥ ८ । १ । २२ ॥

अपादादि में वर्त्तमान पद से परे जो एकवचनान्त युष्मद् अस्मद् पद उन को मे, आदेश हों और वे सब अनुदात्त हों । जैसे गुरुस्ते पण्डितः । गुरुर्मे डितः । देहि मे ददामि ते । इत्यादि ॥ ७८ ॥

७९—त्वामौ द्वितीयायाः ॥ अ० ॥ ८ । १ । २३ ॥

पद से परे अपादादि में वर्त्तमान द्वितीयैकवचनान्त जो युष्मद् अस्मद् पद को त्वा, मा, आदेश हों और वे सब आद्युदात्त हों । जैसे कस्त्वा युनक्ति । मा युनक्ति । पुनन्तु मा । इत्यादि ॥ ७९ ॥

८०—तिङ्ङतिङः ॥ अ० ॥ ८ । १ । २८ ॥

जो अपादादि में अतिङन्त पद से परे तिङन्त पद हो तो वह सब अनुदात्त हो । जैसे त्वं पचसि । अहं पठामि । स गच्छति । तौ गच्छतः । इत्यादि । तिङ् ग्रहण इसलिये है कि शुक्लं वस्त्रम् । यहां नहीं होता । अतिङ्ग्रहण ये है कि पठति । पचति । यहां न हो ॥ ८० ॥

८१—यावद्यथाभ्याम् ॥ अ० ॥ ८ । १ । ३६ ॥

जो यावत् और यथा से युक्त तिङन्त पद हो तो वह अनुदात्त न हो । यावद्भुङ्क्ते । यथा भुङ्क्ते । यावदधीते । यथाऽधीते । देवदत्तः पचति यावत् । तः पचति यथा । इत्यादि ॥ ८१ ॥

८२—यद्वृत्तान्नित्यम् ॥ अ० ॥ ८ । १ । ६६ ॥

जो यत् शब्द के प्रयोग से युक्त तिङन्त पद हो तो वह अनुदात्त न हो । जैसे ङ्क्ते । यं भोजयति । येन भुङ्क्ते । इत्यादि ॥ ८२ ॥

८३—गतिर्गतौ ॥ अ० ॥ ८ । १ । ७० ॥

जो गति से परे पूर्व गति हो तो वह निघात हो जाती है । जैसे अभ्युद्धरति । नयति । उपसंन्यानयति । उपसंहरति । अभ्यवहरति । इत्यादि ॥ ८३ ॥

८४–उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४ ॥

जो उदात्त और स्वरित के स्थान में यण् उस से परे अनुदात्त हो तो उसको स्वरित हो जावे । जैसे सुप्वा । यहां सुप् शब्द अन्तोदात्त और विभक्ति अनुदात्त है उस को स्वरित हो जाता है । नीचे जो ‿ यह वक्र चिन्ह होता है वह भी स्वरित ही का चिन्ह है । इसी प्रकार पृथिव्यसि । यहां पृथिवी शब्द अन्तोदात्त है । उससे परे अकार अनुदात्त को स्वरित हो जाता है । स्वरित यण्–सकुल्लवि–आशा । खलपवि–आशा । यहां सकुल्लवि खलपवि सप्तम्यन्त स्वरितान्त शब्द हैं उन के यण् से परे आकार अनुदात्त को स्वरित हो जाता है । जैसे सकुल्ल्व्याशा । खलप्व्याशा । इत्यादि ॥ ८४ ॥

८५–एकादेश उदात्तेनोदात्तः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५ ॥

उदात्त के साथ जो अनुदात्त का एकादेश है वह भी उदात्त ही हो जाता है । जैसे अग्नी । वायू । यहां अग्नि वायु शब्द अन्तोदात्त हैं । उन का अनुदात्त विभक्ति के साथ एकादेश हुआ है । इसी प्रकार वृक्षैः । प्लक्षैः । इत्यादि ॥ ८५ ॥

८६–स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६ ॥

जो उदात्त के साथ एकादेश है वह पदादि अनुदात्त के परे विकल्प करके स्वरित हो पक्ष में उदात्त हो । सु–उत्थितः । सूत्थितः । सूत्थितः । वि–ईक्षते । वीक्षते । वीक्षते । इत्यादि ॥ ८६ ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीनिर्मितः सौवरो ग्रन्थः समाप्तः ॥

संवत् १९३९ भाद्रशुक्ल १३ चन्द्रवार ॥

उदात्त से परे अनुदात्त - स्वरित

उस अनुदात्त से परे उदात्त या स्वरित हो तो उस

अनुदात्त स्वरित नहीं

उ - अ उ या स्व - यथा पूर्व

उ - अ स्व)

उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित नहीं होगा जबकि उसके

आगे उदात्त या स्वरित हो।

सम्बन्धिकशब्दानित्याघातपासर्गयो: ।

नित्य समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥